मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वर्णित सद्गुरु-सत्संग की महत्ता

डा० श्रीमती पुष्पलता जैन

साधना की सफलता और साध्य की प्राप्ति के लिए सदगुरू का सत्संग प्रेरणा का स्रोत रहता है। गुरू का उपदेश पापनाशक, कल्याणकारक, शान्ति और आत्मशुक्ति करने वाला होता है।[1] उसके लिए श्रमण और वैदिक साहित्य में आचार्य, बुद्ध, पूज्य, धर्माचार्य, उपाध्याय, भन्ते, भदन्त, सदगुरू, गुरू आदि शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। जैनाचार्यों ने अर्हन्त और सिद्ध को भी गुरू माना है और विविध प्रकार मे गुरूभक्ति प्रदर्शित की है। इहलोक और परलोक में जीवों को जो कोई भी कल्याणकारी उपदेश प्राप्त होते हैं वे सब गुरूजनों की विनय से ही होते हैं।[2] इसलिये उत्तराध्ययन में गुरू और शिष्यों के पारस्परिक कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है।[3] इसी सन्दर्भ में सुपात्र और कुपात्र के बीच भेदक रेखा भी खींची गई है।[4]

जैन साधक मुनिरामसिंह[5] और आनंदतिलक[6] ने गुरू की महत्ता स्वीकार की है और कहा है कि गुरू की कृपा से ही व्यक्ति मिथ्यात्व रागादि के बन्धन से

---

1. उत्तराध्ययन, 1.27.
2. जे केइ वि उवएसा, इह पर लोर सुहावहा संति।
   विणएण गुरुजणाणं सव्वे पाउणइ ते पुरिसा॥ वसुनन्दि-श्रावकाचार, 339; तुलनार्थ देखिये—घेरंड संहिता, 3,12-14.
3. उत्तराध्ययन, प्रथम स्कन्ध।
4. श्वेताश्वेतरोपनिषद् 3-6,22; आदि पर्व, महाभारत, 131.34-58.
5. ताम कुतित्थइं परिभमई धुत्तिम ताम करेइ।
   गुरुहु पसाएँ जाम णवि अप्पा देउ मुणेइ॥ योगसार, 41, पृ. 380.
   गुरु दिणयरु गुरू हिमकिरणु गुरू दीवउ गुरू देउ।
   अप्पापरहं परंपरहं जो दरिसावइ भेउ॥ दोहापाहुड़, 1
6. गुरू जिणवरू गुरू सिद्ध सिउ, गुरू रयणतय सारु।
   सो दरिसावइ अप्प परु आणंदा! भव जल पावइ पारु॥ आणंदा, 36.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त होकर भेद विज्ञान कर अपनी आत्मा के विशुद्ध रूप को जान पाता है। इसलिए उन्होंने गुरू की वन्दना की है। आनन्दतिलक भी गुरू को जिनवर सिद्ध, शिव और स्व-पर का भेद दर्शनिवाला मानते हैं। जैन साधकों के ही समान कबीर ने भी गुरू को ब्रह्म (गोविन्द) से भी श्रेष्ठ माना है। उसी की कृपा से गोविन्द के दर्शन सम्भव हैं।[7] रागादिक विकारों को दूर कर आत्मा ज्ञान से तभी प्रकाशित होती है जब गुरू की प्राप्ति हो जाती है।[8] उनका उपदेश सशयहारक और पथ प्रदर्शक रहता है।[9] गुरू के अनुग्रह एवं कृपा दृष्टि से शिष्य का जीवन सफल हो जाता है। सदगुरू स्वर्णकार की भाँति शिष्य के मन से दोष और दुर्गुणों को दूर कर उसे तप्त स्वर्ण की भाँति खरा और निर्मल बना देता है।[10] सूफी कवि जायसी के मन में पीर (गुरू) के प्रति श्रद्धा दृष्टव्य होती है। वह उनका प्रेम का दीपक है।[11] हीरामन तोता स्वयं गुरू का रूप है।[12] और संसार को उसने शिष्य बना लिया है।[13] उनका विश्वास है कि गुरू साधक के हृदय में विरह की चिनगारी प्रक्षिप्त कर देता है और सच्चा साधक शिष्य गुरू की दी हुई उस वस्तु को सुलगा देता है।[14] जायसी के भावमूलक रहस्यवाद का प्राणभूत तत्व प्रेम है और यह प्रेम पीर की महान् देन है। पद्मावतके स्तुतिखण्ड में उन्होंने लिखा है--

सैयद असरफ पीर पियारा,
जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
लेसा हिए प्रेम कर दिया,
उठी जोति भा निरमल हीया।[15]

सूर की गोपियाँ तो बिना गुरू के योग सीख ही नहीं सकीं। वे उद्धव से मथुरा ले जाने के लिए कहती हैं जहाँ जाकर वे गुरू श्याम से योग का पाठ ग्रहण कर सकें।[16] भक्ति-धर्म में सूर ने गुरू की आवश्यकता अनिवार्य बतलाई है और उसका उच्च स्थान माना है। सदगुरू का उपदेश ही हृदय में धारण करना चाहिए क्योंकि वह सकलभ्रम का नाशक होता है—

सदगुरू कौ उपदेश हृदयधरि,
जिन भ्रम सकल निवरायौ ।।[17]

---

7. गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरू आपकी जिन्ह गोविन्द दियो दिखाय ।। संत वाणी संग्रह, भाग 1, पृ. 2.
8. बलिहारी गुरू आपणें द्यौं हाड़ो कै बार।
जिनि मानिष तें देवता करत न लागी बार ।। कबीर ग्रंथावली, पृ. 1.
9. संसै खाया सकल जग, संसा किनहूँ न खद्ध, वही, पृ. 2-3.
10. वही, पृ. 4।
11. जायसी ग्रन्थमाला पृ. 7।
12. गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।। पद्मावत.
13. गुरू होइ आय, कीन्ह उचेला। जायसी ग्रन्थावली, पृ. 33.
14. गुरू विरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।। वही, पृ. 51.
15. जायसी ग्रन्थावली, स्तुतिखण्ड, पृ. 7.
16. जोगविधि मधुबन सिखिहैं जाइ। .....
बिनु गुरू निकट संदेसनि कैसे, अवगाह्यौ जाइ। सूरसागर (सभा) पद 4328.
17. वही, पद 336।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर गुरू महिमा का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि हरि और गुरू एक ही स्वरूप हैं और गुरू के प्रसन्न होने से हरि प्रसन्न होते हैं। गुरू के बिना सच्ची कृपा करनेवाला कौन है ? गुरू भवसागर में डूबते हुए को बचानेवाला ओर सत्पथ का दीपक है।[18] सहजोबाई भी कबीर के समान गुरू को भगवान से भी बड़ा मानती हैं।[19] दादू लौकिक गुरू को उपलक्ष्य मात्र मानकर असली गुरू भगवान को मानते हैं।[20] नानक भी कबीर के समान गुरू की ही बलिहारी मानते हैं जिसने ईश्वर को दिखा दिया अन्यथा गोविन्द का मिलना कठिन था।[21] सुन्दरदास भी "गुरूदेव बिना नहीं मारग सूझय" कहकर इसी तथ्य को प्रकट करते हैं।[25] तुलसी ने भी मोह भ्रम दूर होने और राम के रहस्य को प्राप्त करने में गुरू को ही कारण माना है। रामचरित मानस के प्रारम्भ में ही गुरू वन्दना करके उसे मनुष्य के रूप में करुणासिन्धु भगवान माना है। गुरू का उपदेश अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए अनेक सूर्यों के समान है—

बंदऊँ गुरूपद कंज कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर ॥[23]

कबीर के समान ही तुलसी ने भी संसार-सागर को पार करने के लिए गुरू की स्थिति अनिवार्य मानी है। साक्षात् ब्रह्मा और विष्णु के समान भी, बिना गुरू के संसार से मुक्त नहीं हो सकता।[24] सदगुरू ही एक ऐसा कर्णधार है जो जीव के दुर्लभ कामों को भी सुलभ कर देता है—

करनधार सदगुरू दृढ़ नावा,
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।

मध्यकालीन हिन्दी जैन कवियों ने भी गुरू को इससे कम महत्व नहीं दिया। उन्होंने तो गुरू को वही स्थान दिया है जो अर्हन्त को दिया है। पंच परमेष्ठियों में सिद्ध को देव माना और शेष चारों को गुरू रूप स्वीकारा है। ये सभी 'दुरित हरन दुखदारिद दौन" के कारण है।[25] कबीरादि के समान कुशललाभ ने शाश्वत सुख की उपलब्धि को गुरू का प्रसाद कहा है—"श्री गुरू पाय प्रसाद सदा सुख सपंजइ रे"[26] रूपचन्द ने भी यही माना।[27] बनारसी दास ने सद-गुरू के उपदेश को मेघ की उपमा दी है जो सब जीवों

---

18. सूरसागर, पद 416-417; सूर और उनका साहित्य,
19. परमेसुर से गुरू बड़े गावत वेद पुरान—संतसुधासार, पृ. 182.
20. आचार्य क्षितिमोहन सेन दादू और उनकी धर्म साधना, पाटल सन्त विशेषांक भाग 1, पृ. 112.
21. बलिहारी गुरू आपण्यें द्यौ हाड़ी के बार।
जिनि मानिषतें देवता, करत न लागी बार ॥ गुरू ग्रंथ साहिब, म 1, आसादीवार, पृ-1
22. सुन्दरदास ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ. 8
23. रामचरितमानस, बालकाण्ड 1-5
24. गुरू बिनु भवनिधि तरइ न कोई जौ विरंचि संकर सम होई।
बिन गुरू होहि कि ज्ञान-ज्ञान कि होई विराग बिनु। रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, 93.
25. वही, उत्तरकाण्ड, 43/4.
26. बनारसी बिलास, पंचपद विधान, 1-10. पृ. 162-163.
27. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ. 117.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का हितकारी है।[28] मिथ्यात्वी और अज्ञानी उसे ग्रहण नहीं करते पर सम्यग्दृष्टि जीव उसका आश्रय लेकर भव से पार हो जाते हैं।[29] एक अन्यत्र स्थल पर बनारसी दास ने उसे "संसार सागर तरन तारन गुरू जहाज विशेखिये" कहा है।[30]

मीरा ने "सगुरा" और 'निगुरा' के महत्व को दृष्टि में रखते हुए कहा कि सगुरा को अमृत की प्राप्ति होती है और निगुरा को सहज जल भी पिपासा की तृप्ति के लिए उपलब्ध नहीं होता। सदगुरू के मिलन से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है।[31] रूपचन्द का कहना कि सदगुरू की प्राप्ति बड़े सौभाग्य से होती है। इसलिए वे उसकी प्राप्ति के लिए अपने इष्ट से अभ्यर्थना करते हैं।[32] धानतराय को

"जो तजै विषे की आसा, धानत पावै सिववासा ।
यह सदगुरू सीख बताई, काहूँ विरलै के जिय जाई"

के रूप में अपने सदगुरू से पथप्रदर्शन मिला।[33]

सन्तों ने गुरू की महिमा को दो प्रकार से व्यक्त किया है—सामान्य गुरू का महत्व और किसी विशिष्ट व्यक्ति का महत्व। कबीर और नानक ने प्रथम प्रकार को अपनाया तथा सहजोबाई आदि अन्य सन्तों ने प्रथम प्रकार के साथ ही द्वितीय प्रकार को स्वीकार किया है। जैन सन्तों ने भी इन दोनों प्रकारों को अपनाया है। अर्हन्त आदि सदगुरुओं का तो महत्वगान प्रायः सभी जैनाचार्यों ने किया है पर कुशलाभ जैसे कुछ भक्तों ने अपने लौकिक गुरुओं की भी आराधना की है।[34]

---

28. ज्यों वरषा वरषै समै मेघ अखंडित धार ।
त्यों सदगुरू वानी खिरै, जगत जीव हितकार ।। नाटक समयसार, 6, पृ. 338.

29. वही, साध्यसाधक द्वार, 15-16, पृ. 342-3.

30. बनारसीविलास, भाषासूक्त मुक्तावली, 14, पृ. 24.

31. सतगुरू मिलिया सुंज पिछानी ऐसा ब्रह्म मैं पाती ।
सगुरा सूरा अमृत पीवे निगुरा प्यासा जाती ।
मगन भया मेरा मन सुख में गोविन्द का गुणगाती ।
मीरा कहे इक आस आपकी औरों सूं सकुचाती ।। संतवाणी संग्रह, भाग 2, पृ. 69.

32. अब मोहि सदगुरू कहि समझायौ,
तो सो प्रभु बड़े भागनि पायौ ।
रूपचन्द नटु विनवै तोही,
अब दयाल पूरौ दै मोही ।। हिन्दी पद संग्रह, पृ. 49.

33. वही, पृ. 127; तुलनार्थ देखिये—
मन वचकाय जोग थिर करके त्यागो विषय कषाई ।
धानत स्वर्ग मोक्ष सुखदाई सतगुरू सीख बताई ।। वही, पृ. 133.

34. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ. 117.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरू के इस महत्व को समझकर ही साधक कवियों ने गुरू के सत्संग को प्राप्त करने की भावना व्यक्त की है । परमात्मा से साक्षात्कार करानेवाला ही सदगुरू है ।[35] सत्संग का प्रभाव ऐसा होता है कि वह मजीठ के समान दूसरों को अपने रंग में रंग लेता है ।[36] काग भी हंस बन जाता है।[37] रैदास के जन्म-जन्म के पाश कट जाते हैं ।[38] मीरा सत्संग पाकर ही हरि चर्चा करना चाहती हैं ।[39] सत्संग से दुष्ट भी वैसे ही सुधर जाते हैं जैसे पारस के स्पर्श से कुधातु लोहा भी सुवर्ण बन जाता है ।[40] इसलिए सूर दुष्ट जनों की संगति से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हैं ।[41]

मध्यकालीन हिन्दी जैन कवियों ने भी सत्संग का ऐसा ही महत्व दिखाया है । बनारसीदास ने तुलसी के समान सत्संगति के लाभ गिनाये हैं —

कुमति निकंद होय महा मोह मंद होय;
जगमगै सुयश विवेक जगै हियसों ।
नीति को दिठाव होय विनैको बढ़ाव होय;
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लिये सों ॥
धर्म को प्रकाश होय दुर्गति को नाश होय;
बरतै समाधि ज्यों पियूष रस पियेसों ।
तोष परि पूर होय, दोष दृष्टि दूर होय,
एते गुन होहिं सत-संगति के कियेसौं ॥[42]

---

35. भाई कोई सतगुरू संत कहावै, नैनन अलख लखावै"—कबीर, भक्ति काव्य में रहस्यवाद, पृ. 146.

36. दरिया संगत साधु की, सहजै पलटै अंग ।
जैसे संग मजीठ के कपड़ा होय सुरंग ॥ दरिया 8, संत वाणी संग्रह, भाग 1, पृ 129.

37. सहजो संगत साध की काग हंस हो जाय । सहजोबाई, वही पृ. 158.

38. कह रैदास मिलै निजदास, जनम-जनम के काटे पास—रैदास वानी, पृ.32.

39. तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चर्चा सुण लीजो—संतवाणी संग्रह, भाग 2, पृ. 77.

40. जलचर थलचर नभचर नाना, जे जड़ चेतन जीव जहाना ।
मीत कीरति गति भूमि भिलाई, जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ।
जो जानव सतसंग प्रभाऊ, लोकहुँ वेद न आन उपाऊ ।
बिनु सतसग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।
सतसंगति मुद मंगल मूला, सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई, पारस परस कुधात सुहाई । तुलसीदास-रामचरितमानस, बालकाण्ड 2-5.

41. तजौ मन हरि विमुखन को संग ।
जिनके संग कुमति उपजत है परत भजन में भंग ।
कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ।
कागहि कहा कपूर चुगाए स्वान न्हवाए गंग ।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़ै न दूजौ रंग ॥ सूरसागर, पृ. 176.

42. बनारसी विलास, भाषासूक्त मुक्तावली, पृ. 50.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्यानतराय कबीर के समान उन्हें कृतकृत्य मानते हैं जिन्हें सत्संगति प्राप्त हो गयी है।[43] भूधरदास सत्संगति को दुर्लभ मानकर नरभव को सफल बनाना चाहते हैं--

प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे ॥
मानुष भव जोग दुहेला, दुर्लभ सतसगति मेला।
सब बात भली बन आई, अर्हन्त भजौ रे भाई ॥1॥[44]

दरिया ने सत्संगति मजीठ के समान बताया और नवलराम ने उसे चन्द्रकान्तमणि जैसा बताया है। कवि ने और भी दृष्टान्त देकर सत्संगति को सुखदायी कहा है—

सतसंगति जग में सुखदायी ॥
देव रहित दूषण गुरू साँचो,
धर्म्म दया निश्चै चितलाई ॥

सुक मैना संगति नर की करि,
अति परवीन वचनता पाई।
चन्द्र क्रांति मनि प्रगट उपल सौ,
जल ससि देख झरत सरसाई ॥
लट घट पलटि होत षटपद सी,
जिन कौ साथ भ्रमर को थाई।
विकसत कमल निरखि दिनकर कों,
लोह कनक होय पारस छाई ॥

बोझ तिरै संजोग नाव कै,
नाग दमनि लखि नाग न खाई।
पावक तेज प्रचड महाबल,
जल परता सीतल हो जाई ॥

संग प्रताप भुयंगम जै है,
चंदन शीतल तरल पटाई।
इत्यादिक ये बात घणेरी,
कौलों ताहि कहौं जु बढ़ाई ॥[45]

इसी प्रकार कविवर छत्रपति ने भी संगति का महात्म्य दिखाते हुए उसके तीन भेद किये हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।[46]

---

43. कर-कर सपत संगत रे भाई ॥
पान परत नर नरपत कर सो तौ पांननि सौ कर असनाई ॥
चन्दन पास नींव चन्दन ह्वै काठ चढ्यो लोह तरजाई।
पारस परस कुधात कनक ह्वै बूंद उर्द्ध पदवी पाई ॥
करई तौवर संगति के फल मधुर मधुर सुर कर गाई।
विष गुन करत संग औषध के ज्यों बच खात मिटें वाई ॥
दोष घटै प्रगटें गुन मनसा निरमल ह्वै तज चपलाई।
द्यानत धन्न धन्न जिनकें घट सत संगति सरधाई ॥ हिन्दी पद संग्रह, पृ. 137.

44. हिन्दी पद संग्रह, पृ. 155.

45. वही, पृष्ठ 185–86.

46. देखो स्वांति बूंद सीप मुख परी मोती होय :
केलि में कपूर बांस माँहि बंसलोचना।
ईख में मधुर पुनि नीम में कटुक रस;
पन्नग के मुख परी होय प्रान मोचना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी जैन साधकों ने विभिन्न उपमेयों के आधार पर सदगुरू और उनकी सत्संगति का सुन्दर चित्रण किया है। ये उपमेय एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए दिखाई देते हैं जो निःसन्देह सत्संगति का प्रभाव है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि जैनेतर कवियों ने सत्संगति के माध्यम से दर्शन की बात अधिक नहीं कि जबकि जैन कवियों ने उसे दर्शन मिश्रित रूप में अभिव्यक्त किया है।

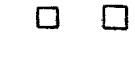

अंबुज दलमिपरि परी मोती सम दिपै,
तपन तबेपै परी नसै कछु सोचना।
उतकिस्ट मध्यम जघन्य जैसौ संग मिलै,
तैसौ फल लहै मति पोच मति पोचना ॥147॥
मलय सुवास देखौ निंबादि सुगंध करै, पारस पखान लोह कंचन करत है।
रजक प्रसंग पट समलतें श्वेत करै, भेषज प्रसंग विष रोगन हरत है॥
पंडित प्रसंग जन मूरखतें बुध करै, काष्ठ के प्रसंग लोह पानी में तरत है।
जैसौ जाकौ संग ताकौ तैसौ फल प्रापति है, सज्जन प्रसंग सब दुख निरवत है ॥148॥
मन मोदन पंचशती, पृ. 70–71.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org